अनुबोधन, खण्ड 2, अंक 2, अप्रैल–जून 2026, पृष्ठ 97–102
जर्नल वेबसाइटः **ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट) 3108-1185 (ऑनलाइन)**
https://anubodhan.org **https://doi.org/10.65885/anubodhan.v2n2.2026.067**

# प्रेम की अवधारणा और दिनकर का काव्य

**अजीत कुमार तिवारी [1] और प्रो० दीपक प्रकाश त्यागी [2]**

प्राप्तिः 24 जून 2026 / स्वीकृतः 27 जून 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 29 जून 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

**सारांश**
रामधारी सिंह दिनकर का काव्य यथार्थ जगत के मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण है। दिनकर के काव्य वांग्मय का उदय छायावाद की पीठ पर हुआ था। अतः उनका काव्य जन भावना के रूप में इस ब्रह्माण्ड में एकमात्र सत्य और अनश्वर प्रेम को केन्द्रित कर आगे बढ़ता है जिसके वर्णन में उत्साह के रस का बादल अपनी गर्जना करते हैं। इनके काव्य में ओज, आक्रोश, क्रांति, पुरुषार्थ की जो तरंगे अबाध गति से मानवीय मन में ऊर्जा का संचार करती है, उसका का केंद्र अत्यंत कोमल है और इससे प्रेम के रस की अमृतमयी धारा बहकर इस धरित्री पर मानवीय सभ्यता को सफल बनाती है। प्रस्तुत लेख में रसवन्ती से लेकर उर्वशी तक के काव्य की रसमय पंक्तिया यह स्पष्ट करती है की दिनकर का काव्य–केंद्र मुख्यतः मानवीय जीवन के लिए अपरिहार्य शाश्वत प्रेम, प्रणय और सौन्दर्य का काव्य है जो समय–समय पर अपनी उर्जा के तापमान में कमी या वृद्धि करता है। दिनकर की राष्ट्रीय भावना या जन चेतना की कविता हो, सभी प्रेम की वर्षा की ही उपज है। यह प्रेम की अधिकता का इन्द्रधनुष ही है जो कभी पारिवारिक प्रेम दायित्यों को सामने लाता है तो कभी सामाजिक प्रेम सरोकारों को। एक ओर यह हुंकार, कुरुक्षेत्र, परशुराम की प्रतीक्षा के रूप में राष्ट्र के गौरव की बलिवेदी पर मर–मिटने को तैयार करता है तो दूसरी ओर उर्वशी के रूप में प्रेम के उच्चतर एवं अद्वितीय रूप को सामने रखकर मानव जीवन में इसकी आवश्यकता और सार्थकता को प्रमाणित करता है। दिनकर के काव्य के मंथन से प्रेम और सौन्दर्य की ऐसी मणि प्राप्त होती है जो ईश्वर रचित इस प्रकृति की उपादेयता में मानवीय जीवन में विराजमान प्रेम को अमरता प्रदान करती है।
**बीज शब्दः** प्रीति, प्रणय, पंचम पुरुषार्थ, पुष्टिमार्ग, सूफी, इश्कमिजाजी, इश्कहकिकी, प्रकृति प्रेम, मानव प्रेम, सुधा सिन्धु, उद्दात, आकुलता, प्रेम प्रतिदान

दिनकर कवि–लेखक ही नहीं, गम्भीर अध्येता एवं चिन्तक–विचारक भी रहे हैं। दिनकर–काव्य में शुरू से अन्त तक विचारों की गूँज–अनुगूँज किसी–न–किसी रूप में अवश्य दिखायी पड़ती है। कविता उनकी देश –समाज की हो या प्रेम–श्रृंगार की; विचारों की उपस्थिति वहाँ काव्य–रीढ़ की तरह है जो अपने अन्दर यथार्थ जगत की संवेदनाओं की सरणी समेटे हुए है। दिनकर कवित्व की इस सरणी में ओज, आक्रोष, क्रान्ति के साथ प्रेम और श्रृंगार की कोमल भावनाओं की लहरें निर्बाध गति से अपनी अनुपम छटॉ बिखेरती हुई आती–जाती रही है। मैं इस लेख में प्रेम की अवधारणा और दिनकर के काव्य पर विचार करूँगा।

[1] शोध छात्र, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा तथा पत्रकारिता विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
[2] प्रोफ़ेसर, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा तथा पत्रकारिता विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
✉ अजीत कुमार तिवारी, E-mail: ajeetanita@gmail.com

प्रेम के स्वरूप का आदि–काल से चिन्तन चला आ रहा है। वैदिक काल में 'प्रेम' शब्द का प्रयोग नगण्य रूप में था। उस समय 'प्रेम' शब्द के लिए 'काम' शब्द का प्रयोग होता था। काम का अर्थ है– ''वासना, कामना और सृष्टि संकल्प रूपी परम तत्व भी होता था। गृहस्थ जीवन में दाम्पत्य–जीवन का निर्वाह होता है। "प्रेम कहानियों में प्रेम पात्री के लिए तपस्या का वर्णन मिलता है।''[1]

प्रेम का मूल भाव या तत्व तथा इसका मूल स्रोत प्रीति है। परस्पर प्रीति के अभाव में प्रेम की उत्पत्ति होना संभव नहीं है। अतः प्रीति ही प्रेम का उद्‌गम स्थल है। पहले प्रीति होती है तत्पश्चात् प्रेम का उद्‌भव होता है। प्रीति एक प्राण दो देह का ही स्वरूप है। प्रेम या प्रीति की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'प्री' धातु से होती है। 'प्रीणति इति प्रियः' अर्थात् जो प्रसन्न करता है वह प्रिय है। दिवादिगण की प्रीङ् प्रीण धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर प्रीति शब्द की निष्पत्ति होती है। इसी प्रकार 'प्री' में 'क' प्रत्यय करने पर 'प्री' शब्द की सिद्धि हुई। प्रियस्य भाषः इमनिन्व् प्रादेशः एकाच्क स्वात् नटि लोपः होकर 'प्रेमन्' शब्द बनता है। 'प्रेमन्' में 'हलन्त्य लोप' से 'न' का लोप होकर प्रेम बनता है। प्रेम (प्री + क्तिन्) का शाब्दिक अर्थ प्रसन्नता, आह्लाद, सन्तोष और खुशी से अभिप्रेत है।

प्रेम का दूसरा पर्यायवाची शब्द 'प्रणय' है। इसकी व्युत्पत्ति 'वी' धातु से हुई है। इसका तात्पर्य है आगे ले जाना लेकिन बाद में इसका सांकेतिक अर्थ प्रेम हो गया। इसका अर्थ और भी संकुचित होकर मात्र दाम्पत्य प्रेम हेतु होने लगा। 'वी' धातु में 'प्र–उपसर्ग पूर्वक 'अच' प्रत्यय लगाने से प्रणय बना। प्रणय उसे कहा गया है जो प्रेमी को प्रेमास्पद की ओर ले जाए।

प्रेम वास्तव में उच्च आदर्शों की सिद्धि के लिए किया जाने वाला कठोर, श्रमसाध्य प्रयास है, जो जीवन के विविध आयामों में स्फूर्तिदायक एवं प्रेरणादायक होता है। इस प्रकार प्रेम मात्र हँसी या अमोद–प्रमोद अथवा भोग–विलास की वस्तु नहीं है।

प्राचीनकाल में राजाओं के मध्य प्रभुत्व हेतु युद्ध होते थे। मुगलों के शासनकाल (13 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी) में सुन्दरियों को प्राप्त करने हेतु युद्ध होते थे। 'जाकर बेटी सुन्दर हुई, तापर धाय धरयौ हथियार' तथा मुगल बादशाहों के सुन्दरियों की ओर आकर्षित होने के फलस्वरूप और प्रेम कहानियों के आधार पर लोकगीतों की रचना की गई। इसी समय में अनेक समाज सुधारक हुए। धर्म–सुधारकों ने अवतारों से सम्बन्धित कविताएँ लिखीं। इस प्रकार शिव–शक्ति (पार्वती), विष्णु–लक्ष्मी, राम–सीता और कृष्ण–राधा के नाम जुड़ जाने से अलौकिक प्रेम शब्द का उत्कर्ष हुआ और प्रेमाक्ति की सरिता कलकल निनाद करती प्रवाहित होने लगी। महर्षि नारद ने भक्ति को 'परम प्रेम रूपा" और "अमृत स्वरूपा कहा है।

भक्ति युग के भक्ति साधना में प्रेम का रस ऐसा समाया कि उसके पीने वाले जगत नियंता ईश्वर को प्राप्त करने के अधिकारी हो गए। इसी समय यह कहा गया कि भक्ति साधना के निरन्तर अभ्यास से रति और अनुराग का भाव उत्पन्न होता है जो प्रगाढ़ होने पर प्रेम नाम से जाना जाता है–

*साधन भक्ति हड़ते हय रतिर उदय।*

*रति गाढ़ हइले तार प्रेम नामे कय।।* [2]

इस प्रकार प्रेम का स्वरूप गाढ़ा सान्द्रता है। इस चराचर जगत् का आधार स्तम्भ प्रेम ही है और सृष्टि की रचना के केंद्र बिन्दु में प्रेम ही है। प्रेम ही प्रकृति है और प्रकृति मानव की सहचरी है। प्रेम ही पंचम पुरुषार्थ है। इस जगत में जीव का भगवत्प्रेम ही नित्य धर्म है अर्थात् मानव इस प्रेम के द्वारा ही स्वसुख गन्ध–लेश–शून्य होकर प्रभु सेवा से माधुर्य मूर्ति के सर्व चिन्ताकर्षी माधुर्य का अनुभव कर चिद् शाश्वत आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है और मानव जीवन को सार्थक किया जा सकता है।

वस्तुतः प्रेम एक ऐसा तत्त्व है जिसकी एक निश्चित परिभाषा करना अत्यधिक कठिन और असम्भव है। "अनेक स्थलों पर प्रेम जय–पराजय का कारण बन जाता है। प्रेम मानव–हृदय का एक सात्त्विक भाव है, जो अन्तः स्थल से प्रवाहित होकर दूसरे के हृदय को प्रभावित करता है। "प्रेम की भाषा शब्द रहित है।"[3] इसे परिभाषा में बाँधना कठिन कार्य है। फिर भी विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है

प्रेम के सम्बन्ध में डॉ० अवधबिहारीलाल कपूर की मान्यता इस प्रकार है कि–"प्रेम भाव–पुष्प परिपक्व फल है। इसका रस परम आस्वादनीय हो जाता है। इस प्रेम की शक्ति उसकी समस्त

चित्त–वृत्तियों को, जो हजारों भागों में विभक्त होकर ममता रज्जु के द्वारा देह–गेहादि में बधी रहती है। चारों ओर से समेटकर आप्राकृतत्वता प्रदान करती हुई श्री भगवान के नाम रूप–गुण–लीलादि से बाँध देती है। यह फल उस महासूर्य के समान है, जिसके उदित होते ही निखिल पुरुषार्थ का एक ही लक्ष्य रहता है–श्री भगवान के नाम–रूप–गुण लीलादि का आस्वादन करना।[4]

अंग्रेजी में 'लव' को निम्न रूप में देखा गया है :

"A feeling of strong attachment induced by that which delights or commands admiration, or an affection of the mind excited by beauty and worth of any kind."

"Affection; kind feeling; friendship; strong liking or desire; fondness; good wil l; opposed to hate; often with of and an object."[5]

कविवर 'आनंदनघन घनानन्द' ने अपना पूरा जीवन छल–छद्म रहित सीधे प्रेम के मार्ग को न्यौदावर कर दिया–

*'अति सूधो सनेह कौ मारग है,*
*जहाँ नैंकु सयानप बाँक नहीं।* [6]

पुष्टिमार्ग के मतानुसार प्रेम ही भक्ति है और भक्ति ही प्रेम है। अतः कृष्ण के प्रति प्रेम होना परमावश्यक है, यही प्रेमाभक्ति है। नन्ददास ने अपने काव्य में कृष्ण को ही अपना इष्ट माना है। इसीलिए उनके काव्य में कृष्ण प्रेम का वर्णन मिलता है–

*जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै ।*
*प्रेम–भगति सो पावै अरु सबकै मन भावै ।।*
*तब तुम्हारी निज प्रेम भगति रहि सेई आवै ।*
*तो कहुँ तुम्हरे चरन–कमल को निकटहिं पावैं।।"* [7]

सूरदास ने भी अपने काव्य में प्रेम–भक्ति का ही समर्थन करते हुये लिखा है –

*'प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई, नाथ कृपा करि दीजै सोई।* [8]

चन्द्रबली पांडे का कथन है– "सूफी वास्तव में प्रेम के साथी है। उनका व्यापार त्याग से बढ़ता और संग्रह से नष्ट हो जाता है। उनके पास वेदना का अनमोल हीरा है। लोगों ने इस हीरे का सौदा किया। जो प्रणयी थे उनको उसका फल मिला, जो विषयी थे उसको चाट चाटकर मर मिटे। सच तो यह है कि सूफ़ियों के इश्क़ ने बहुतों की बरबाद किया और अधिकतर लोग हक़ीक़ी की ओट में मज़ाज़ी के ही शिकार हुए। फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि सूफियों ने क्या मुहम्मदी, क्या मसीही, क्या यहूदी, क्या हिन्दू, संसार के सभी मतों में प्रेम का प्रसार किया गया है। उनमें से जिन लोगों को उसकी अनुभूति और वेदना का ठीक–ठीक अनुभव हुआ वे तो इश्क़ मज़ाज़ी के 'जीने' से अपने प्रियतम के पास पहुँच गए, पर जिन लोगों को आशिक बनने का जुनून सवार हुआ उनके सामने हुस्न का ऐसा जाल बिछा कि वे उसी में फंसकर रह गए। वे मज़ाज़ी से लुढ़क पड़े और रति के पुल से खसक कर भव–सागर में डूब गए। उनका उद्धार न हुआ।"[9]

सूफी साहित्य में पूर्व प्रेम की प्रधानता देखी जाती है। पद्मावत, लैला–मजनूँ, हंस जवाहिर, चित्रावती, इन्द्रावती, अनुराग बाँसुरी और चन्द्रकला नलदमयन्ती में पक्षी रूप–गुण–सौन्दर्य का सन्देश ले जाते हैं। प्रेमोत्पत्ति पत्र पठन, प्रत्यक्ष दर्शन, रूप श्रवण, स्वप्न दर्शन या चित्र दर्शन से होती है। चित्रावली' में स्वप्न से और 'पद्मावत' में श्रवण से प्रेम का संचार होता है। ये पूर्वराग (पूर्व प्रेम) की स्थिति है।

प्रेम की सहज भूमि उस हृदय को मानना चाहिए, जिसमें अतृप्त प्रवृत्तियों की भरमार है और जो यह अनुभव करता है कि वह उपेक्षित, रीता और असन्तुष्ट है। कलाकारों में इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ असंख्य होती हैं और वे सदैव एक प्रकार की तृषा से चंचल, एक प्रकार की रिक्तता से आक्रान्त रहते हैं। इसीलिए सौन्दर्य को देखते ही कलाकार के हृदय में हलचल–सी मचने लगती है, जो प्रेम और कला, दोनों की पहली पहचान है।

सूफी परम्परा में एक कहावत चलती है कि इश्कमिजाजी इश्कहकीकी का सोपान है अर्थात् शारीरिक सोपान पर प्रेम करते–करते मनुष्य अध्यात्मिक सोपान की ओर बढ़ने लगता है। प्रेम के भीतर आध्यात्मिक प्रसार की शक्ति है, यह निश्चित बात है। किन्तु क्या प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक सोपान से,

स्वभावतया, अध्यात्म की ओर बढ़ सकता है? काश! यह बात होती। किन्तु वह है नहीं। दिनकर का मानना है कि शरीर प्रेम की जन्मभूमि है और जैसे सब लोग जन्मभूमि से प्यार करते हैं, वैसे ही प्रेम को भी अपनी जन्मभूमि अन्य सभी भूमियों से अधिक पसन्द है :

*प्रेम की मादकता का भेद*
*छिपा रहता भीतर मन में,*
*काम तब भी अपना मधु वेद*
*सदा अंकित करता तन में।*[10]

दिनकर जी भारतीय संस्कृति के रक्षक, क्रांतिकारी चिंतक, अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाले अमर कवि और भारतीय जन–जीवन के निर्भीक शंखनाद हैं। हिंदी साहित्य के इस सूर्य की कवितओं में आग और राग दोनों समाहित है। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश, क्रांति और मानवीय पुरुषार्थ का मार्तंड अपनी प्रखर रश्मियों से मनुष्य के अन्दर असीमित उर्जा का संचार करता है वही दूसरी ओर उनके साहित्य मे प्रेम, शृंगार एवं सौन्दर्य का शशि अपनी शीतल, धवल और मधुमयी चांदनी से मनुष्यों के ह्रदय में विद्यमान शाश्वत प्रेम की व्यापकता और सार्थकता को उसके चरम उत्कर्ष तक ले जाता है। यदि दिनकर के काव्य का मंथन किया जाय तो प्रेम और सौन्दर्य कि ऐसी मणि प्राप्त होती है जो मानवीय जीवन में  विराजमान प्रेम को अमरता प्रदान करती है।

वस्तुतः दिनकर का काव्य वांग्मय का उदय छायावाद के पीठ पर हुआ था। अतः उनका काव्य जन भावना के रूप में इस ब्रह्माण्ड में एकमात्र सत्य और अनश्वर प्रेम को केन्द्रित कर आगे बढ़ता है जिसके वर्णन में उत्साह के रस का बादल अपनी गर्जना करते हैं द्य इस प्रकार हम कह सकते है की प्रेम मानव के मन की समस्त भावनाओं का द्योतक है। प्रेम के अन्तर्गत दोनों ही प्रेम आते हैं–प्रकृति–प्रेम भी और मानव–प्रेम भी। दिनकर के काव्य में दोनों का मणिकांचन संयोग हुआ है। इनके काव्य में प्रेम की जो नदी 'रेणुका' से बहना प्रारंभ करती वह उर्वशी के समुद्र में जाकर समाहित हो जाती है। रेणुका के 'मिथिला में शरद' में सौन्दर्य प्रेम  कुछ इस रूप में मुखरित  होकर ध्यान आकृष्ट करता हैः

*क्या शरद निशा कि बात कहूं?*
*जो कुछ देखा था रात, कहूं?*
*निर्मल ऋतु कि मुख–भरी हंसी,*
*चांदनी बिसुध भू आन खसी*
*मदरसा, विकल, मदमाती– सी*
*अपने मुख में न समाती थी।* [11]

दिनकर की प्रकृति भी उतनी ही मूर्त है, जितना उनका प्रेम। इस दृष्टि से 'निर्झरिणी', 'अमा–संध्या' और 'जागरण' शीर्षक कविताएँ द्रष्टव्य हैं, जिनमें प्रकृति का ही चित्रण हुआ है। 'निर्झरिणी' में वह कहते हैं–

*वनभूमि ने दूब के अंचल में*
*गिरी से गिरते मुझे छान लिया,*
*गिरी–मल्लिका कुंतल–बीच पिरो*
*मुझको निज बालिका मान लिया*
*कलियों ने सुहाग के मोती दिए,*
*नव उषा ने सेंदुर–दान दिया,*
*जगती को हरी लख मैंने हरी –हरी*
*दूबों का ही परिधान किया।* [12]

बाद में भी उन्होंने 'चन्द्राह्वान', 'ओ नदी!' और 'बादलों की फटन' जैसी मोहक प्रकृति–कविताएँ लिखीं, जिनमें से अन्तिम दो कविताओं में अभिव्यक्ति की भंगिमा बिलकुल बदली हुई है। जहाँ तक मानव–प्रेम की बात है, शुरू में ही उन्होंने 'प्रीति' जैसी कविता लिखी थी, जिसमें प्रेम का गहरा दर्द लेकर प्रेम को परिभाषित किया गया था।

*प्रीति न अरुण साँझ के घन सखी..............*
*प्रीति नील गंभीर गगन सखी* [13]

*तथा*
*अंतर्दाह मधु मंगल सखी!*
*प्रीति स्वाद कुछ ज्ञात उसे जो*
*सुलग रहा तिल–तिल, पल–पल सखी!*
*अंतर्दाह मधुर मंगल सखी* [14]

इसी के आस–पास उन्होंने प्रेम की दो विलक्षण कविताएँ लिखीं– 'दाह की कोयल' और 'अन्तर्वासिनी', जिन्हें पढ़कर मन भावाभिभूत हो जाता है। अपनी काव्य–रचना के आखिरी दौर में भी उन्होंने 'आज शाम को' और 'धन्यवाद, मैं, सचमुच, नहीं मरूँगा'–जैसी प्रेम–कविताएँ लिखीं, जिनकी नवीनता मन को मुग्ध कर लेती है। इसके पहले वाले दौर की उनकी कविता 'नील कुसुम' तो निर्विवाद रूप से प्रेम की एक असाधारण कविता है, जिसका लहजा नाटकीय और नया होने के कारण अतिशय प्रभावशाली है। जैसा कि

*हो जहाँ कही भी नील कुसुम की फुलवारी*
*मैं एक फूल तो किसी तरह ले जाऊंगा*
*जूड़े में जब तक भेंट नहीं यह बांध सका*
*किस तरह प्राण की मणि लो गले लगाऊंगा?* [15]

यहाँ यह उधृत करना अत्यंत समीचीन होगा की उनकी कविता "रसवंती" में प्रेम का एक रूप सामने आता है, जो दो व्यक्तियों के बीच के आत्मीय संबंध को दर्शाता है। दिनकर इस प्रेम को केवल भावनाओं का आदान–प्रदान नहीं मानते, बल्कि इसे आत्मा की एकता का प्रतीक मानते हैं। "रसवंती" की कुछ पंक्तियों में वे कहते हैं:

*"प्रणय न हो तो नारी का शील,*
*कुसुम की नोक पर तिरता हुआ जल है,*
*प्रणय हो तो वही शील नारी का*
*वसंत की कली पर बैठी भौंर है।"*

कहने की आवश्यकता नहीं कि दिनकर जी की प्रेम–भावना का सर्वाधिक उदात्त रूप उर्वषी और पुरूरवा के प्रेम में व्यक्त हुआ है, जो पूर्वोल्लिखित उर्वषी काव्य में ही दृष्टिगत होता है।[16]

नारी–सौन्दर्य पर रीझनेवाली कलाकार की आँखें केवल नारी–सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं रहतीं, वे वनों की हरियाली और पर्वतों के अवाक् सौन्दर्य पर भी देर तक बिरमना चाहती हैं। इसी प्रकार, रमणी–रूप की चोट खाकर जगनेवाला ह्रदय अदृश्य सौन्दर्य के सन्धान में भी तत्पर हो जाता है :

विस्मृति के जिस सुधा–सिन्धु में तुम्हें कविता और दर्शन पहुँचाते हैं, वहाँ मैं नारी–प्रेम की नाव पर चढ़कर गया हुआ हूँ। रूप साकार कवित्व है। और सौन्दर्य की लहर दर्शन की लहर से मिलती–जुलती है।[17]

*प्रेम की आकुलता का भेद*
*छिपा रहता भीतर मन में,*
*काम तब भी अपना मधु वेद*
*सदा अंकित करता तन में।*
*प्रेम नारी के ह्रदय में जन्म जब लेता,*
*एक कोने में न रुक*
*सारे ह्रदय को घेर लेता है।*
*पुरुष में जितनी प्रबल होती विजय की लालसा,*
*नारियों में प्रीति उससे भी अधिक उद्दाम होती है।*
*प्रेम नारी के ह्रदय की ज्योति है,*
*प्रेम उसकी जिन्दगी की साँस है;*
*प्रेम में निष्फल त्रिया जीना नहीं फिर चाहती।*
*शब्द जब मिलते नहीं मन के,*

*प्रेम तब इंगित दिखाता है,*
*बोलने में लाज जब लगती,*
*प्रेम तब लिखना सिखाता है*
*प्रेम होने पर गली के श्वान भी*
*काव्य की लय में गरजते, भौंकते हैं।*
*प्रातःकाल कमल भेजा था शुचि, हिमधौत, समुज्ज्वल,*
*और साँझ को भेज रहा हूँ लाल–लाल ये पाटल।*
*दिन भर प्रेम जलज–सा रहता शीतल, शुभ्र, असंग*
*पर, धरने लगता होते ही साँझ गुलाबी रंग।*
*उसका भी भाग्य नहीं खोटा*
*जिसको न प्रेम–प्रतिदान मिला,*
*छू सका नहीं, पर, इन्द्रधनुष*
*शोभित तो उसके उर में है।* [18]

रामधारी सिंह दिनकर की अनेक कविताएँ शृंगार और प्रेम से पूरित हैं। जैसे– निर्गन्ध फूल, पुष्प–विलाप, विदा, करुण कहानी, गीत, विदाई, आह्वान, विचित्र प्रेम, विश्व–छवि, कविता, निर्झरिणी, कोयल, अमा–सन्ध्या, फूल, गा रही कविता युगों से, जागरण, मिथिला में शरत्, प्रेम का सौदा, रसवन्ती, अश्रु–गीत, फूल की जंजीर, सूखे विपट की सारिके !, प्रीति, नारी, संध्या, प्रतीक्षा, गीत–अगीत, रास की मुरली, अगेय की ओर, बालिका से वधू, दाह की कोयल, अगुरु–धूम, पुरुष–प्रिया, मानवती, नारी, गीत, अन्तर्वासिनी, पावस–गीत, विजन में, सावन में, भ्रमरी, रहस्य, बटोही, धीरे–धीरे गा, निर्जीव प्रेम, गीतवासिनी, चन्द्राह्वान, पावस–गीत, गायक, नील कुसुम, स्वर्ण–घन, द्वन्द्व गीत, मुसकान, पुरूरवा के चार गीत, ओ नदी !, नदी और पीपल, बादलों की फटन, आज शाम को, सौन्दर्य, नदी और पेड़, विदेहिनी, अतिथि, धन्यवाद, मैं, सचमुच, नहीं मरूँगा, छठी संज्ञा का जागरण, आँसू, स्मृति, प्रेम आदि कविताएँ हैं।

## संदर्भ


1. वृहद्देवता 5.50.81 16.11.09
2. चैतन्य चरितामृत, सुबलश्याम
3. सिंह, अध्यापक पूर्ण, आचरण और सभ्यता,
4. कपूर, अवध बिहारी, भक्ति विज्ञान, पृ0 सं0– 58
5. बेबस्टर्स न्यू इण्टरनेशनल डिक्सनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज–1279
6. शर्मा, संतोष कुमार, हित प्रेमदास के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, प्रथम संस्करण 2012
7. दास, बाबू ब्रजरत्न (संपा0), नन्ददास ग्रन्थावली, कृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ0 34
8. शुक्ल, रामचन्द्र, सूरसागर–सूरदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं0 2029
9. पाण्डेय, चन्द्रवली, तसब्बुफ अथवा सूफीमत, सरस्वती मंदिर, बनारस, द्वितीय संस्करण सन् 1948, पृ0 230
10. दिनकर रचनावली–8, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ0 159
11. दिनकर, रामधारी सिंह, *रेणुका,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2022, पृ0 –64
12. दिनकर, रामधारी सिंह, *रेणुका,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2022, पृ0 –56
13. दिनकर, रामधारी सिंह, *कविश्री –प्रीति,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2019, पृ0 –20
14. दिनकर, रामधारी सिंह, *कविश्री –प्रीति,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2019, पृ0 –22
15. दिनकर, रामधारी सिंह, *कविश्री –प्रीति,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2019,पृ0 –58
16. दिनकर रचनावली, भाग–2, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ0 7
17. दिनकर रचनावली–8, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ0 161
18. दिनकर रचनावली–2, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ0 235–236